Indian Research Journal
Vol -2 , ISSUE –XI, Dec- 2012
ISSN No - 2230 - 7850
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

मिथिला की सामाजिक संरचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भुवनेश्वर कुमार भारती
बी० ए०, एम० ए०
शोध छात्र , इतिहास विभाग ,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा.

भूमिका

'मिथिला' संस्कृत के 'मिथ' से निर्मित है– जिसका अर्थ है– संयुक्त। प्राचीन काल में जो विदेह, वैशाली एवं अंग प्रदेश था, संयुक्त होकर मिथिला नाम से विख्यात हुआ। निमि, मिथि एवं मिथिला इनमें से जिनके नाम पर भी मिथिला नामकरण हुआ हो अभी भी विवादास्पद है, लेकिन मिथिला नाम एक क्षेत्र विशेष के लिए रूढ़ हो गया है। तीरभुक्ति मिथिला का ही एक पर्यायवाची नाम है, जिसका अर्थ है– 'तीर' अर्थात् नदी का किनारा और भुक्ति का अर्थ है– 'सीमा'। इस प्रकार तीरभुक्ति शब्द का अर्थ– नदी किनारे के भू–भाग से लगाया गया है।'' मिथिला के निर्माण और विकास में प्राचीन काल से नदियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। कोसी, गंडकी एवं गंगा क्रमशः इसके पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण सीमा से बहती है। इसके अतिरिक्त भी कई छोटी–छोटी नदियाँ अपना जाल फैलाये हुई है। अतः मिथिला का तीरभुक्ति नाम सार्थक प्रतीत होता है। अब तीरभुक्ति को साधारणतः तिरहुत नाम से पुकारा जाता है। पूर्व में तिरहुत गणतंत्र का बोधक हुआ करता था, परन्तु वर्त्तमान में गणतंत्र का बोधक न होकर कमिश्नरी का बोधक है। मिथिला वासियों को आज भी अन्य क्षेत्र के लोग तिरहुतिया कहकर सम्बोधित करते हैं। तिरहुत शब्द का प्रयोग ज्योतिरीश्वर के वर्णरत्नाकार'' अब्बुल फजल की आइने अकबरी'' एवं बैसेन्ट स्मिथ के अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया में उपलब्ध''। तिरहुतिया की पहचान के बारे में आज भी एक कहावत सुनने को मिलती है।

मिथिला की भौगौलिक सीमा का परम्परागत उल्लेख वृहत्त विष्णुपुराण (पंचम शताब्दी) के मिथिला महात्म्य खण्ड में मिलता है। कवीश्वर झा की उक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि मिथिला के उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूरब में कोसी एवं पश्चिम में गण्डकी नदी बहती है। इस तरह इस भू–भाग का विस्तार पूरब से पश्चिम लगभग 290 कि० मी० और उत्तर से दक्षिण 193 कि० मी० होता है। तद्नुसार इसका क्षेत्रफल 55970 वर्ग किलोमीटर होता है। जिसके अंतर्गत पूर्वी और पश्चिमी चम्पारण, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, मुंगेर, भागलपुर, पूर्णियाँ का कुछ भाग एवं नेपाल की तराई का दक्षिणी भाग (सप्तरी, मोहत्तरी, मोरंग, सरलाही जिला) इसके अंतर्गत आते हैं। मिथिला की सीमा में परिवर्तन हुआ है। सप्तरी, मोरंग विदेश की धरती बन गई है। पूर्व में मिथिला की सीमा कोसी मानी जाती थी, अब पूर्णिया एवं भागलपुर का मात्र पूर्वीय क्षेत्र। इसी तरह पश्चिमी भाग में भोजपुरी का प्रभुत्व होने के कारण चम्पारण, बेतिया आदि जिला इससे बाहर हो गया है। इस तरह अब जो मिथिला बची है उसका क्षेत्रफल 19620 वर्ग मील से अधिक नहीं है।' यह क्षेत्र 25^0 एवं 27^0 उत्तर–अक्षांतर तथा 84^0 एवं 87^0 देशान्तर के बीच अवस्थित है जहाँ साल भर 127^0 सेन्टीमीटर औसत वर्षा होती है, यहाँ औसत न्यूनतम तापमान 7^0ड (मकर संक्रांति के समय) एवं अधिकतम तापमान 42^0ड (कर्क संक्रांति के समय)।

मिथिला की उर्वरा धरती पर प्रकृति की विशेष अनुकम्पा सदा से रही है। यहाँ की भूमि सुजलांम् सुफलाम् शस्य श्यामलां है। संपूर्ण मिथिला मैदानी क्षेत्र है, जिसके अंतर में कमला, कोसी, बलान, तिलजुगा, जीवछ, बागमती आदि नदियाँ नर्तन करती हैं। यह आम, पान और मखान के लिए प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की

जलवायु साधारणतः वर्ष के अधिकांश भाग में शीतल एवं सुखद रहती है। यद्यपि वर्त्तमान में इसकी जलवायु में भी परिवर्तन कुछ अंश में देखने को मिलता है। मिथिला का संबंध प्राचीन काल से ही ऋषि–मुनियों, राजाओं, पण्डितों और न्यायिकों से रहा है। जिसके अवशेष आज भी गढ़, डीह, परती–परांत के रूप में विद्यमान है। यहाँ कुछ प्रमुख स्थानों का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है।

सितामढ़ी को 'श्री क्षेत्र' नाम से भी जाना जाता है। यह जनकपुर से 7–8 कोस दक्षिण–पश्चिम 'लखनदेई नदी' के किनारे अवस्थित है। कहा जाता है कि सीता की जन्म–भूमि यहीं है और यहीं पर मिथलेश महराज 'सिर ध्वज जनक' ने पानी के लिए हल चलाया था। वर्त्तमान में सितामढ़ी बिहार का एक जिला है। यहाँ जानकी जी का भव्य मंदिर है। प्रति वर्ष चैत्र–रामनंवमी में यहाँ मेला लगता है।

जनकपुर नेपाल की सीमा में है। यहाँ राम के सभी भाईयों के नाम से मंदि है। चैत्र शुक्ल पक्ष रामनवमी एवं मार्ग शीर्ष शुक्ल पंचमी में व्यापक मेला लगता है।

गौतम कुण्ड न्याय शास्त्र के प्रणेता ऋषि गौतम का निवास स्थान माना जाता है, जो वर्त्तमान में कमतौल रेलवे स्टेशन के निकट ब्रह्मपुर गाँव के समीप है। गौतम मुनि के नाम पर ही इस कुण्ड का नामकरण किया गया है। जहाँ प्रति वर्ष लाखों लोग इस कुण्ड में स्नान कर अपने को धन्य समझते हैं। स्कंद पुराण में इसका उल्लेख मिलता है।

अहिल्या स्थान कमतौल रेलवे स्टेशन से दक्षिण एवं गौतम कुण्ड से पूरब में स्थित है। अहिल्या गौतम मुनि की पत्नी थी, बदचलन के अभियोग में गौतम ने उन्हें शाप दे दिया। गौतम के शाप से शापित अहिल्या पत्थर की मूर्ति के रूप में द्रष्टव्य है। महाभारत के वन पर्व के 84 वें अध्याय में अहिल्या स्थान तीर्थ यात्रा के रूप में वर्णित है।

जगबन भी कमतौल स्टेशन के नजदीक एक राजस्व गाँव के रूप में अवस्थित है। कहा जाता है कि इसी जगवन में याज्ञवल्क्य का जन्म हुआ था, जो महान ऋषि हो गए थे।

ककरौल मधुबनी जिला के अन्तर्गत रहिका प्रखण्ड से सटे पश्चिम में है, यह कपिल मुनि का निवास स्थान माना जाता है।

जजुवार मुजफ्फरपुर जिले की एक बड़ी बस्ती है। आम धारणा है कि प्राचीन काल में मिथिला के प्राचीन विद्वानों का यह एक प्रसिद्ध अध्ययन केन्द्र था, जहाँ केवल यजुर्वेद का अध्ययन किया जाता था।

पण्डौल सकरी से उत्तर एक छोटा सा रेलवे स्टेशन है, जहाँ वर्त्तमान में रजोखर पोखर विद्यमान है। जिसके संबंध में जनश्रुति है कि मिथिला के प्रसिद्ध राजा सिंह ने खुदवाया था। उस तालाब के संबंध में एक कहावत आज भी प्रचलित है।

कपिलेश्वर स्थान ककरौल परगना जरैल में अवस्थित है। जन श्रुति के अनुसार कपिल मुनि द्वारा स्थापित यहाँ कपिलेश्वर महादेव का भव्य मंदिर है। सिंहेश्वर स्थान वर्त्तमान में मधेपुरा से 10 किलोमीटर उत्तर में अवस्थित है। जनश्रुति अनुसार स्वयं श्रृंगि मुनि ने इस शिवालय की स्थापना की थी। प्रति वर्ष शिव–रात्रि में विशाल मेला लगता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षी भी क्रय–विक्रय के लिये लाये जाते हैं। कुशेश्वर स्थान दरभंगा के पूर्वी, समस्तीपुर के उत्तरी–पूर्वी एवं सहरसा के पश्चिमी सीमा पर अवस्थित है। मिथिलांचल के प्रसिद्ध लोकगाथाओं के गीत में कुशेश्वर स्थान की चर्चा है। प्रतिदिन कुशेश्वर में कुशेश्वर नाथ की पूजा–अर्चना होती है, लेकिन रविवार के रोज उनकी पूजा–अर्चना विशिष्ट रूप से की जाती है। पशु–पालक अपनी मनोकामना पूरी होने के पश्चात् घी और दूध से इनकी आराधना करते हैं।

उग्रतारा ग्राम महिषीं परगना कव–खंड, जिला भागलपुर में है। नवरात्र में यहाँ विशेष उत्सव का आयोजन होता है। महानवमी के दिन महिषों (भैंसो) की बलि दी जाती है। यहीं पर सौराठ (ब्राह्मणों की वैवाहिक सभा होती थी) सभा की तरह मैथिली ब्राह्मणों की एक वैवाहिक सभा होती थी। अब यह वैवाहिक सभा यहाँ नहीं होती।

उच्चैठ मधुबनी जिला के बेनीपट्टी अनुमंडल के अन्तर्गत है, जहाँ भगवती का भव्य मंदिर है। जनश्रुति के अनुसार इसी भगवती के वरदान से महामूर्ख कालिदास कवि कुल गुरू कालिदास हो गए। वर्त्तमान में यह एक सिद्ध पीठ के रूप में प्रसिद्ध है। कालिदास के नाम से एक अंगीभूत महाविद्यालय भी है।

मिथिला का इतिहास अतिविशाल और पुष्ट है। इस भू–भाग की स्थापना का श्रेय विदेह को दिया गया है। जिसका वंश विदेह वंशी कहलाया। इसी वंश में जनक (द्वितीय) नाम से प्रख्यात जगत् जननी सीता के पिता सिर ध्वज हुए, जिनके महात्म्य से मिथिलावासी आज भी अपने को गौरवान्वित समझते हैं। इन जनक राजाओं का राज काल लगभग ढ़ाई हजार वर्षों (3000 ई० पू० से 6000 ई० पू० तक) रहा।'' इसी राजवंश की समयावधि में वैदिक संस्कृति के नियामक स्मार्त्त ग्रंथों का निर्माण हुआ जिसके आधार पर समाज को सुनिश्चित संरचनात्मक ढ़ाँचा उपलब्ध हुआ। जाति व्यवस्था, कर्मकाण्ड की अधिकता और ब्राह्मणों की सत्ता इसी युग की देन है। इसी युग में जनक याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि–मनिषी एवं गार्गी जैसी विदुषी नारी पैदा हुई।''

जैन और बौद्ध ग्रंथों के अनुसार परवर्ती विदेह वंशी राजे–काज से विमुख होकर ज्ञान मार्ग के अनुसरण में संयासी बनते हुए। फलस्वरूप विदेह राज तंत्र का पतन हुआ एवं काल क्रमानुसार विदेह तथा वैशाली को मिलाकर एक वृहत्तर गणतंत्रात्मक राज्य का गठन हुआ, जो वृज्जि गणतंत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वृज्जि गणतंत्र का शासनकाल 600 ई० पूर्व से 325 ई० पूर्व तक माना जाता है, जो बौद्ध धर्म का उत्कर्ष काल था। बौद्ध धर्म के प्राबल्य से वैदिक संस्कृति दब गई लेकिन विलुप्त नहीं हो पायी, उसका विकास अन्तर्मुखी होकर रह गई। तीन सौ वर्षों तक शासन करने के बाद वृज्जि गणतंत्र आपसी कलह के कारण छिन्न–भिन्न हो गया। इसी आपसी फूट ने विदेशी आक्रमणकारियों को अच्छा अवसर प्रदान किया, जिस कारण 326 ई० से लेकर 1097 ई० तक शुंग–वंशी, नंद वंशी, कुशांग एवं पाल वंशी आदि राजाओं का मिथिला पर अधिकार रहा। लेकिन समय ने पलटा खाया और कर्णाट राज्य की स्थापना के साथ मिथिला में पुनः एक नवीन युग का आरम्भ हुआ।''

कर्णाट वंशीय नरपति नान्य देव ं का प्रभाव

कर्णाट वंशीय नरपति नान्य देव के सत्ता संभालने ही समाज में एक ऐसी अनुशासित संरचनात्मक धारा प्रवाहित हुई जिसमें बौद्ध धर्म का बचा–खुचा प्रभाव लुप्त हो गया। कला एवं साहित्य के क्षेत्रों में कर्णाट परपति राजाओं का कार्य–काल विशेष स्मरणीय रहा। कारण परम्परागत शास्त्र चिन्तन, सम्यता संस्कृति एवं साहित्य के विकास के साथ–साथ मिथिलादेशीय संगीत साधना का आरंभ हुआ था। प्रथम नरपति नान्यदेव एवं अंतिम नरपति हरि सिंह देव का इस क्षेत्र में विशेष योगदान रहा। इसी युग में मिथिला की जन भाषा में साहित्य रचना का भी श्री गणेश हुआ।'' मिथिला की प्रसिद्ध पंजी प्रथा इसी कर्णाट वंशीय राजा हरिसिंह देव के समय शुरू हुई।

कर्णाट वंशीय क्षत्रिय राजाओं के अवसान के बाद मिथिला का बागडोर ओइनवार मूल के ब्राह्मण कुल में आ गया, जिसका शासन 14 वीं शताब्दी मध्य से आरम्भ होकर 16 वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक रहा। यह राजवंश इस्लामी सत्ता के अधीन रहा, फिर भी राजा शिव सिंह के राज्य काल में मिथिला का चौमुखी विकास हुआ। शिव सिंह के समय ही विद्यापति जैसे महान कवि पैदा हुए, जिन्होंने मिथिला की जनभाषा को साहित्यिक गरिमा प्रदान करवाया तथा मैथिली साहित्य धारा का विकास प्रारंभ हुआ। जिनमें मैथिली संगीत एवं मिथिला की विशिष्ट भाव–वृत्ति आध्यात्मिक एवं भौतिक भक्ति–मुक्ति दोनों का मधुर एवं रागात्मक द्योतन हुआ। ओइनवार वंशीय राजाओं के शासन काल में मिथिला की सामाजिक स्थिति में विशेष बदलाव नहीं आया, लेकिन ब्राह्मणवादी संस्कृति प्रबल हो गई जो इस राजकूल के पतन का कारण बनी। तत्पश्चात् खण्डवला राजकुल की स्थापना महामहोपाध्याय महेश ठाकुर द्वारा 1557 ई० में हुई जिसमें मिथिला की सांस्कृतिक जीवन धारा पूर्ववत बनी रही। मिथिला भाषा साहित्य में भी दृष्टिकोण मूलक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया। खण्डवला कुल का वंशज वर्त्तमान में दरभंगा और मधुबनी के राजनगर में देखे जाते हैं।

मिथिला के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन अंग्रेज शासकों के आने से प्रारंभ हुआ, मैथिली साहित्य में भी विशेष परिवर्तन पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के संपर्क के कारण ही दिखलाई पड़ता है।''

मिथिला के धर्म और संस्कृति की जड़े इतनी गहरी है कि विभिन्न घात–प्रति–घातों के बावजूद हिल नहीं पायीं। मिथिला का सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण नीर–क्षीर न्याय से संपृक्त है। ऐसी

मान्यता है कि आर्य संस्कृति सर्वप्रथम इसी भू–भाग पर फैली थी। वैदिक कर्मकाण्ड का प्रचार भी सर्वप्रथम इसी भूमि पर हुआ। इसीलिए यहाँ कोई नया पंथ, संप्रदाय और देशीय धर्म का स्वरूप नहीं बन पाया। हिन्दु और मुसलमान समान रूप से एक–दूसरे धर्म के प्रति श्रद्धावान दिखें।

मिथिला की धार्मिक संस्कृति में शिव, शक्ति और विष्णु का समान महत्व है। तीनों की आराधना श्रद्धा पूर्वक की जाती है। यहाँ के लोगों की धार्मिक प्रवृत्ति के बारे में एक धारणा प्रचलित है–

अंतःशाक्ता वहिर्शैवा सभामध्येतुवैष्णवाः। मैथिलों के सिर पर तीन देवताओं के चिन्ह वाली रेखाएँ इसके समन्वय का प्रतीक है। दाँये से बाँये तरफ की सामानान्तर भस्म की रेखा शिव–भक्ति का सूचक है। उजला चन्दन विष्णु की भक्ति और सिंदुर शक्ति की भक्ति का सूचक हैं यद्यपि मिथिला में महादेव की पूजा व्यापक रूप में होती है। शक्ति की पूजा भी उसी रूप में प्रचलित है। शिव मुक्ति दाता माने जाते हैं, तो शक्ति सिद्धि दात्री। मिथिला भारत के प्रमुख शक्ति पीठ के रूप में स्वीकृत है– उर्ग तारा स्थान (महिषी), उच्चैठ (मधुबनी)। जयमंगला (भुसारी), काव्यायन स्थान मिथिला में ही स्थित है। वस्तुतः तंत्र उपासना में शक्ति साधना की प्रमुखता रहते हुए भी शिव तत्व का मिश्रण भी अभिष्ट रहता है। कारण शिव और शक्ति के संयोग से सृष्टि का विधान संभव है। यही कारण है कि शिव–शक्ति मय मंत्र उपासना मैथिल संस्कृति का अभिन्न अंग बन गई है। शिव और शक्ति की आराधना के साथ विष्णु की भी आराधना की जाती है। वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित व्यक्तियों के ईष्ट देव भिन्न होते हैं। कुछ लोग राम की पूजा करते हैं, तो कुछ लोग राम और सीता के युगल रूप की। इसी प्रकार कुछ कृष्ण के उपासक होते हैं तो कुछ राधा और कृष्ण के युगल रूप के। ईष्ट देव की भिन्नता के कारण वैष्णवों में कई सम्प्रदाय देखने को मिलते हैं– रामानन्दी सम्प्रदाय, श्री सम्प्रदाय, सखी सम्प्रदाय, राधा–बल्लभी सम्प्रदाय आदि। किन्तु राम की पूजा सर्वाधिक होती है। गीता और तुलसीदास रचित मानस इसके आधार ग्रंथ हैं। इसके अतिरिक्त भजन कीर्तन और शक्ति का जितना प्रभाव है विष्णु का प्रभाव उतना नहीं है, शिव की नचारी और महेशवाणी तथा भगवती के गीत गाहे–बेगाहे, जाने–अनजाने मिथिलावासी के ओठ पर आ जाते हैं।

मिथिलांचल के कबीर पंथी सम्प्रदाय भी देखने को मिलता है। दलित और पिछड़ी जाति के लोग मूलतः इस सम्प्रदाय में दीक्षित होते हैं। वे निर्गुण ब्रह्म के साथ–साथ कबीर को ईश्वर तुल्य मानते हैं। खंजरी पर कबीर की साखी रमैनी और सबद को झूम–झूम कर गाते रहते हैं। इन चारों सम्प्रदायों के अतिरिक्त मिथिलावासी अपने–अपने घरों में भिन्न–भिन्न नामों से प्रचलित ईष्ट देवताओं की पूजा–अर्चना करते हैं। मांगलिक अवसर पर सत्यनारायण भगवान की पूजा सर्वमान्य और सर्वत्र प्रचलित है। सत्यनारायण भगवान की पूजा में सभी सम्प्रदायों का समादार देखने को मिलता है। शक्ति के रूप में सरस्वती और लक्ष्मी की पूजा होती है। पंच देवता सहित गणेश की पूजा होती है। विष्णु के रुप में सत्यनारायण की पूजा होती है। इसके अतिरिक्त पेड़–पौधों की भी पूजा की परम्परा है। विवाह की मांगलिक बेला में वर–वधू से आम और महुआ के पेड़ की पूजा नवरात्र में अष्टमी को बेल वृक्ष की पूजा की जाती है। यहाँ तक की दूब–घास, तुलसी की पत्नी एवं अनावश्यक कहें जाने वाला अकोन के फूल से भी महादेव की पूजा की जाती है।

मिथिला के लोग आज भी यंत्र–मंत्र और टोना–टापर पर विश्वास करते हैं। जीवन का प्रत्येक अगला कदम टोना–टापर और मंत्र के बिना नहीं उठाया जाता है। कमर में दर्द होने पर पीड़ित व्यक्ति के कमर को ऐसे बच्चों के हाथ से स्पर्श कराया जाता है जिसका जन्म ननिहाल में उल्टी दिशा में हुआ हो।

सुखार की स्थिति में वर्षा के लिए मेंढ़क–मेंढ़की की शादी कराई जाती है। वहीं वर्षा बन्द न होने की स्थिति में लकड़ी की बनी चौकी (हेंगा) को मिट्टी में गाड़ी जाती है। पशुओं के बीच महामारी फैलने की स्थिति में भगत नये ढ़क्कन को कपड़े में बाँधकर 'बही' चलाते हैं। साँप के काटने पर भी पीड़ित व्यक्ति को चिकित्सीय इलाज न करा कर मंत्र से जहर उतारने का काम आज भी देखने को मिलता है।

यात्रा में शकुन के साथ–साथ दिक्शूल, भदवा, मसांत, अधपहरा आदि पर विचार किया जाता है। भदवा में कोई मांगलिक कार्य नहीं होता, यहाँ तक कि घर के छप्पर का छाजन भी और नया काम नहीं होता। यात्रा के समय शुभ–अशुभ का विचार किया जाता है। मछली खा कर यात्रा करना, यात्रा वक्त तेली के दर्शन अशुभ माना जाता है। वहीं मछली देखकर, दही खाकर और नील कण्ठ पक्षी के दर्शन शुभ माना जाता है।

मिथिला में कोई भी माह (महिना) और दिन ऐसा नहीं है जिस महिने और दिन में कोई व्रत न हो। सप्ताह का सातो दिन व्रत होता है। महिला और पुरूष अधिकांशतः महिलाएँ रविवार को नमक नहीं खाती, वे लोग सूर्य का व्रत रखती हैं। सोमवारी व्रत बिहार में प्रसिद्ध है। मंगल और शनिवार के दिन मुख्य रुप से लोग हनुमान की पूजा करते हैं। वृहस्पति के दिन महिलायें उपवास रख वृहस्पति देव अर्थात् विष्णु की पूजा करती हैं। शुक्र दिन माँ संतोषी का व्रत रखती हैं। इसके अतिरिक्त माह चैत में रामनवमी, बैशाख में घड़ी, जेठ में दशहरा, आषाढ में ब्रह्म की पूजा, सावन में सोमवारी व्रत और रक्षा बंधन, भादव में चौठ चन्द, विश्वकर्मापूजा, अनन्त चतुदर्शी, आश्विन में नवरात्र, महालया एवं कोजागरा, कार्तिक में दीपावली, भातृ द्वितीया, चित्रगुप्त पूजा, छठ, सामा चकेबा एवं कार्तिक पूर्णिमा का पर्व मनाया जाता है। अग्रहण में विवाह पंचमी, पूस में मकर संक्रांति (तिल संक्रांति), माघ में सरस्वती पूजा (बसत पंचमी) और नरक निवारण चतुदर्शी तथा फाल्गुन में महाशिव रात्रि और होली जैसे महान पर्व का आयोजन होता है अर्थात् मिथिलांचल का जन–जीवन व्रत–त्योहार, अंधविश्वास, जादू–टोना और तंत्र–मंत्र का पर्याय सा है।

मिथिला का सामाजिक स्वरूपः–

पौराणिक–काल से लेकर 21 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मिथिला में सामाजिक स्वरूप लगभग एक ही तरह का रहा है। वर्णाश्रम व्यवस्था आज भी मैथिल समाज में कोढ़ में खाज की तरह कायम है। आजादी से पूर्व तक वर्ण–व्यवस्था एवं पंजी प्रथा पूर्ण रूप से कायम थी। इस संबंध में डॉ० जयकान्त मिश्र का कथन समीचीन प्रतीत होता है–मैथिल जीवन में पंजी प्रबंध विशेष आकर्षण एवं सामाजिक बंधन के रूप में आज भी कायम है। पूर्व में इससे अनेक शुचि, आचार, व्यवहार एवं शालीनता कुलीन लोगों में दिखाई पड़ती थी। अब उसमें बहुत सारे दुर्गुण आ गये हैं, लेकिन फिर भी पारिवारिक शुद्धता मैथिल वैवाहिक पद्धति की नियम–बद्धता यह लायी कि वह पृथक–पृथक वर्ण में आज भी विद्यमान है।''[23] इसी तरह का मत डॉ० उपेन्द्र ठाकुर का भी है। उनका कहना है कि– पंजी व्यवस्था के आरम्भ में जो कोई भी सत्–उपदेश रहा हो, परवर्ती युग में यह मैथिल समाज हेतु वरदान के स्थान पर अभिशाप सिद्ध हुई है। इसके फलस्वरूप मैथिल ब्राह्मण तथा कायस्थ जाति में एकता के स्थान पर विघटन प्रारंभ हुआ।'' इस व्यवस्था के कारण नारी की स्थिति दयनीय हो गई। अनमेल विवाह प्रारंभ हुआ। बाल विवाह को प्रोत्साहन मिला। सती–प्रथा कायम थी। लेकिन वर्त्तमान में नारी की स्थिति काफी सुधरी है। घर के चौकठ से बाहर न निकलने वाली नारी आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे है। सती प्रथा पूर्णतः समाप्त है। बाल–विवाह, महादलित (डोम, मुसहर, हलाल खोर मेहतर) को छोड़ शेष जातियों में नहीं होता।

कृषि कर्म जो मुख्यतः वैश्य तथा निम्न वर्ग के लोगों का व्यवसाय था, यह धारणा भी अब मिट चुकी है। सभी जाति, वर्ग और धर्म के लोग यत्न के साथ करते हैं। कृषि के साथ–साथ पशुपालन आज भी मिथिलांचल में बड़े पैमाने पर होता है। पशु–पालक भी सभी जाति, वर्ग और धर्म के लोग होते हैं। अर्थात् मिथिलांचल में व्यवसाय संबंधी प्राचीन धारणा पूर्णतः मिट चुकी है, कि वैश्य और निम्न वर्ग ही खेती करेंगें। मिथिलावासी वर्त्तमान में आवश्यकतानुसार व्यवसाय करते हैं। उसी तरह पूर्व के वंचित वर्ग भी व्यवसाय करने में किसी से पीछे नहीं है।

इतिहास गवाह है कि देश के सर्वाधिक पिछड़े एवं उपेक्षित मिथिला क्षेत्र सदियों से कला, कौशल एवं संस्कृति का विश्वविख्यात केन्द्र रहा है तथा भारत के सांस्कृतिक इतिहास में मिथिला की अहम भूमिका रही है। वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति काल से हीं मिथिला की पहचान एवं महत्ता वहाँ के लोक जीवन में छिपे सांस्कृतिक वैशिष्टता एवं श्रेष्ठता को लेकर कायम है। अनेकानेक बाह्य एवं आंतरिक संकटों के दौर से गुजड़ने के बावजूद मिथिला अपनी अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान बनाये रखा तथा इस क्षेत्र की सांस्कृतिक जीवन शैली अपनी विकासोन्मुखता की ओर अग्रसर रही। इतना हीं नहीं मिथिला के गौरवमयी सांस्कृतिक परम्परा में कतिपय ऐसे नये–नये आयाम जुड़ते गये जिसके फलस्वरूप आधुनिक वैभवशाली मिथिला का निर्माण संभव हो सका।

मिथिला के सामाजिक संरचना के लिए आधारभूत नियामक के रूप में मिथिला संस्कृति के भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि की अवधारणा अपेक्षित है। प्रागैतिहासिक काल में गंगा घाटी के उत्तरी

मैदान के पूर्वी भाग में यत्र–तत्र अर्द्ध कृषक, पशुपालक समुदाय आबाद था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार आठवीं शताब्दी ई0 पूर्व में विदेह जन के क्षत्रीय और गौतम रहुगण कुल के ब्राह्मण आदि की सहायता से जंगल को समाप्त कर आर्य उपनिवेश के रूप में गंडक नदी के पूरब आर्य संस्कृति का प्रसार किया गया तथा स्थानीय निवासी को वैश्य एवं शूद्र में समायोजित किया गया। नवआगंतुक आर्य और प्रागैतिहासिक स्थानीय निवासी के सांस्कृतिक संलयन से विदेह संस्कृति की नींव पड़ी, जिसकी राजधानी मिथिला नगर के रूप में कायम की गई। जनक राजवंश के तत्वज्ञानी शासक के संरक्षण में ब्रह्मविद्या के पारंगत याज्ञवल्क्य, गार्गी, मैत्रेयी, प्रभृति विद्वान और विदुषी के बौद्धिक सृजनात्मक क्रियाकलापों से मिथिला नगर समस्त उत्तर भारत में ब्रह्मविद्या के प्रमुख केन्द्र के रूप में विख्यात हुआ। मिथिला संस्कृति के प्रारंभिक प्रसार क्षेत्र आधुनिक चम्पारण से लेकर नेपाल की तराई तक प्रसारित हुआ। कालान्तर में लिक्ष्छवी, ज्ञात्रिक, मल्ल आदि का आगमन हुआ और आर्य संस्कृति का प्रसार वैशाली, अंगुत्ताप एवं कोशी के परिक्षेत्रों तक कायम हुआ। जनक राजवंश काल में मिथिला नगर की ख्याति इतनी अधिक बढ़ी कि राजवंश की समाप्ति एवं मिथिला नगर के विध्वंश के बावजूद विदेह राज्य के विखण्डन एवं सांस्कृतिक प्रसार से अनेक जनपदीय राज्य के निर्माण के बावजूद पश्चिम में गंडक, उत्तर में हिमालय की तराई, पूरब में कोशी और दक्षिण में गंगा से आवेष्ठित भूभाग मिथिला देश के रूप में जाना गया। मगध साम्राज्यवाद के प्रभुत्व विस्तार के बाद सम्पूर्ण मिथिला क्षेत्र मगध साम्राज्य का एक प्रमुख प्रांत अर्थात भुक्ति बना और तीरभुक्ति और प्रसार की प्रक्रिया सम्पूर्ण प्राचीन काल में जारी रही, जिसके फलस्वरूप मिथिला अथवा तिरहुत लोक संस्कृति की परिपुष्टि होती रही।

इस सांस्कृतिक संश्लेषण की सुदीर्घ प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जब भारत के इतिहास के सामन्तवादी दौर में विभिन्न प्रादेशिक राजसत्ता के संरक्षण में क्षेत्रीय संस्कृति का उद्भव हुआ और इसी ऐतिहासिक संक्रमण काल में पाल साम्राज्य के ध्वंशावशेष पर पहले कर्नाट और तत्पश्चात ओइनवार राजवंश के छत्रछाया में मिथिला संस्कृति का उद्भव एवं विकास हुआ। मैथिली भाषा एवं साहित्य, नव्य न्याय दर्शन, मीमांसा, जातीय गौरव से परिपूर्ण अनेकों लोकगाथा, लोककला एवं हस्तशिल्प, शैव एवं शाक्त मत तथा तंत्रवाद और लोक रीति एवं लोक जीवन एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर मिथिला की संस्कृति को एक निश्चित पहचान बनाया जिसके पीछे उसके गौरवशाली इतिहास और प्रशस्त भुगोल थे। मिथिला संस्कृति आर्येत्तर और आर्य, विदेह और वज्जी, अंगुत्तराप और कोशी संस्कृति का एक अनुपम समाहार है। मुगल और ब्रिटिश कालीन जमींदारी प्रथा और स्थानीय प्रशासनिक विभाजन के कारण मिथिला संस्कृति के स्थानीय तत्व प्रबल होता नजर आया, किंतु ऐतिहासिक और भौगोलिक आधार पर मिथिला संस्कृति का क्षेत्र वही रहा जिसका निर्माण ग्यारह से चौदहवीं शताब्दी के दौरान हुआ था।

मिथिला लोककला का मानव जीवन के इतिहास से अत्यंत घनिष्ठ संबंध रहा है। हमारी लोककला को परंपरा से आगे बढ़ाने का श्रेय भोलीभाली ग्रामीण जनता को दिया जाता है। लोककला का उदय समाज के रीति–रिवाजों पर अवस्थित है क्योंकि वह परंपरागत विचारों, विश्वासों, आस्थाओं और संकेतों पर आधारित है। लोककला अपने भाव में स्वच्छंद होती है, साथ ही यह जनसाधारण के व्यवहार की भी कला है। प्रायः कहा जाता है कि भारत के सभी क्षेत्रों में लोककला का स्वच्छंद विकास हुआ है। इन सब में एक देश, एक संस्कृति, एक भावना, एक विचार के लोगों की आत्मा बोलती है। भारत के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा मिथिला क्षेत्र की लोककला की एक समृद्ध एवं उन्नत परंपरा है। वर्तमान समय में मधुबनी पेंटिंग के नाम से प्रसिद्ध से चित्रकला की अलौकिक कला–कृतियाँ देशी–विदेशी कला मर्मज्ञों का मन मोह लेती हैं। मिथिला की लोक चित्रकला एक अलौकिक रचना संसार है, जो पूरे मिथिलांचल के लोकजीवन की ऐतिहासिक संस्कृति की परंपरा में विद्यमान है। यह कला मिथिला के मधुबनी, दरभंगा, सहरसा और पूर्णिया जिले के समस्त लोकजीवन की कला है। कला के प्रसंग में मधुबनी पर्याय है। यह नामकरण ही विदेशों में अधिक प्रचलित है।

आज जिस भारतीयता एवं भारतीय संस्कृति का महत्व स्वतंत्र भारत के नागरिक दे रहे हैं उस भारतीयता की उस भारतीय संस्कृति की सुरक्षा प्राचीनकाल से लेकर वर्त्तमानकाल तक किस तरह हुई तथा यहां की संस्कृति किन ग्रंथों में सुरक्षित रही तथा इस संस्कृति के प्रचार और प्रसार में किन विशिष्ट

व्यक्तियों का हाथ रहा तथा वे विशिष्ट व्यक्ति भारत के किस कोने के व्यक्ति थे उन सभी का यदि विश्लेषण करेंगे तो यह आवश्य मानना होगा कि भारत के भू–भाग में मिथिलांचल ही एक ऐसा क्षेत्र था जहां राजर्षि जनक तथा योगी याज्ञवल्क्य से लेकर बौद्ध काल तक एवं वर्त्तमान काल तक इस मिथिलांचल के आचार्य पंडित संस्कृत के विद्वान् तपस्वी, सचरित्र, कर्मठ, मैघावी व्यक्ति थे जिनके कंधों पर उस भारतीय संस्कृति का उस भारतीयता का गौरवपूर्ण संभार था जिसका वहन करते हुए उन लोगों ने भारतीय संस्कृति के साथ संस्कृत साहित्य की कभी उपेक्षा नहीं की। जब संस्कृत साहित्य में दर्शन के क्षेत्र से, धर्मशास्त्र के क्षेत्र से, काव्यकोशादि के क्षेत्र में, मिथिलांचल के सहयोग का तत्त्वान्वेषण करेंगे तो यह सुस्पष्ट हो जायगा कि मिथिलांचल के विद्वानों ने समूचे भारत में फैलकर तथा बंगाल, उड़ीसा, आसाम, राजस्थान, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत, गुजरात सभी प्रांतों में जाकर उस भारतीयता की एवं उस भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए संस्कृत साहित्य का बहुत कुछ प्रचार प्रसार किया था। यहां के संस्कृत विद्वान् कर्मठ सचल अचल दोनों तरह के व्यक्ति थे। सचल व्यक्ति घूम घूम कर भारतीय संस्कृति की सुरक्षा का सत्प्रयास करते थे तथा जो अचल व्यक्ति थे वे विद्यापीठ की स्थापना कर देश विदेश से अन्य प्रांतों से आये शिष्यों को, छात्रों को संस्कृत विद्या का तथ्योन्मीलन उनके समक्ष करते थे, जिससे संस्कृत विद्या का सर्वप्रथम प्राचीन केन्द्र मिथिला ही रही। पीछे जाकर कश्मीर या वाराणसी संस्कृत केन्द्र संस्कृति का केन्द्र, संस्कृत विद्या का केन्द्र हुई तब भी मिथिलांचल संस्कृत केन्द्र भारतीय संस्कृति केन्द्र संस्कृत विद्या केन्द्र अक्षुण्ण बना ही रहा। जब बिहार के दक्षिणी भू–भाग में बौद्ध धर्म का बौद्ध संस्कृति का प्रचार प्रसार हुआ यहां तक कि बौद्ध धर्म राजधर्म हो गया उस समय भी मिथिलांचल के विद्वान् कुमारिल, मंडन मिश्र, उदयनाचार्य, वाचस्पति मिश्र, गंगेश उपाध्याय, जगपति उपाध्याय, पार्थ सारथ मिश्र प्रमृति इतने वैदिक धर्मावलंबी सानतन धर्मावलंबी प्रखर विद्वान् हुए जिन्होंने बौद्ध संस्कृति का बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार दार्शनिक खंडनों के द्वारा भारतवर्ष से दूरवर्ती बना दिया। उस क्रम में वात्स्यायन, वाचस्पति मिश्र, उदयनाचार्य ये सभी नैयायिक मिथिलांचल के ही विद्वान हुए जिन्होंने बौद्ध दार्शनिक आचायों की समस्त मान्यताओं का अक्षरशः खंडन किया। जब बौद्धाचार्यो के मत मतान्तरों का खंडन मिथिलांचल के विद्वान अक्षरशः कर चुके तो उस समुचित वातावरण में आचार्य शंकर ने घूम घूमकर भारतीयता भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य का प्रचार प्रसार सुलभ रूप में संपन्न किया। मिथिलांचल के पंडित विद्वान सहस्त्रों वर्ष से इस भारत देश की संस्कृति की रक्षा करते आये हैं। इस सच्चाई को यद्यपि आज सभी लोग मानने के लिए तैयार नहीं है, किंतु यह कटु सत्य है कि सनातन वैदिक धर्म की रक्षा मीमांसा दर्शन से हुई है जिसका आविष्कार एवं उसकी व्याख्या इसी मिथिलांचल में संपन्न हुई है। महर्षि गौतम से लेकर गंगेश उपाध्याय तक जिस न्याय की श्रृंखला बनी रही उसका गौरव आज भी मिथिला के जिस रूप में प्राप्त है वह दूसरे प्रान्त को नहीं है। इस मिथिलांचल की भाषा की अध्ययन करेंगे तो सुस्पष्ट हो जाएगा कि यहां के विद्वान समाज की भाषा पूर्ण रूप में संस्कृत भाषा ही रही है जिसका आज भी स्वरूप मिथिला की देशी भाषा में सुरक्षित है। आज भी मिथिलांचल के विद्वान् अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति को बहुत गौरव से पालते हैं। प्राचीन भारतीय वैश–भूषा का आदर प्रेम से करते हैं। आज भी उनके समक्ष कूल–मूल गौत्र पंजी पुस्तकाकार में सैकड़ों वर्षो की सुरक्षित है। आज भी वणाश्रम धर्म व्यवस्था यहां बहुत अंशों में अन्य प्रांतों की अपेक्षा सुरक्षित है।

मिथिलांचल का कभी स्वर्ण अवसर था जिस समय मिथिलांचल में आत्मोपासना की लहर थी, यहां के राजे–महाराजे सभी दार्शनिक हुआ करते थे। सभी राजे–महाराजे अध्यायत्म विद्या के संस्कृत विद्या के पारंगत विद्वान् होते थे। आत्मोपासना के लिए तरह तरह की प्रश्नोत्तर का निर्माण किया करते थे। जब आप उपनिषद् ग्रंथों का अध्ययन करेंगे, ब्राह्मण ग्रंथों का अध्ययन करेंगे तो मिथिलांचल के विद्वानों का ग्रंथों का भारतीय संस्कृति की रक्षा में अपूर्व योगदान का अनुभव करेंगे। वृहदारण्यक उपनिषद् में ऋषि अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्म–दर्शन का जो उपदेश देते हैं उससे सुस्पष्ट है कि मिथिलांचल की स्त्रियां पूर्वकाल में अधिक ब्रह्मवादिनी हुआ करती थी। जब राजर्षि जनक की सभा में ब्रह्मवादिनी गार्गी याज्ञवल्क्य से अक्षर ब्रह्म के संबंध में प्रश्न करती हैं तो याज्ञाल्क्य गार्गी को उपदेश देते हुए अक्षर ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन करते हैं– हे, गार्गी व अक्षर ब्रह्म स्थूल नहीं है, अणु नहीं है, हस्व नहीं है, दीर्घ नहीं है, रक्त नहीं है, चिकना नहीं है, छाया नहीं है, अन्धकार नहीं है, वायु नहीं है, आकाश नहीं है, वह असंग है। रस से विहीन

है, और मन तथा वाणी का वह विषय नहीं है। वह तेज नहीं है, प्राण नहीं है, मुंह से उसका संबंध नहीं है। वह अपरिणामी, कूटस्थ है, वह न अंदर न बाहर है, न तो वह मोक्ष है न तो वह मक्ष्य है। इस तरह अक्षर ब्रह्म का निरूपण वृहदारण्यक उपनिषद् में परिलक्षित होता है। मिथिलांचल के विद्वान् उपनिषदों के व्यवहार पक्ष को अच्छी तरह समझते थे। वे गृहस्थश्रम में रहकर संन्यास का महत्व न देकर दार्शनिक तत्वों को व्यवहार में लाकर उससे मानव जीवन को प्रभावित करने में भारतीय परंपरा के पूर्ण आराधक थे। वे ज्ञान कर्म समुच्चयवादी थे, वे उपनिषदों की आचार मीमांसा का उपयोग कर भारतीय समाज की निर्मय, स्वतंत्र बनाने का सत्प्रयास करते थे। समस्त वर्णाश्रमधर्मावलंवियों को उन्नत आध्यात्मिक पथ पर आरूढ़ करने के लिए पूर्ण सचरित्र बनाकर भारत के प्रत्येक कोने में जाकर जयपुर हो जोधपुर हो वीकानेर हो दिल्ली हो सभी जगहों में राजगुरू बनते थे तथा नैतिक गुणों के उपदेशक होते थे।

सारांश

मिथिला के विद्वान प्राचीनकाल से सच्चरित्र सुयोग्य कर्मठ रहे हैं। जब अंग्रेजी की शिक्षा हुई उस समय में भी महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा, डॉ. अमरनाथ झा, डॉ. आदित्यनाथ झा, महामहोपाध्याय डॉ. उमेश मिश्र, प्रो. हरिमोहन झा, डॉ. मदनेश्वर मिश्र, डॉ. सुभद्र झा, डॉ. बेचन झा, डॉ. मुनीश्वर झा, डॉ. जयमन्त मिश्र आदि अनेकों विद्वान् हुए जिनमें कुछ आज भी हैं जो सच्चरित्र एवं सुयोग्य कर्मठ व्यक्ति हैं। मिथिलांचल के विद्वान आत्मज्ञानी होकर भी, गृहस्थाश्रम में रहकर भी जनतंत्र धर्म हेतु सभी प्रांतों में विचरण किया करते थे आज भी कर हे हैं। यह तो मिथिलांचल का ही गौरव है कि भारत के कोने–कोने में ही नहीं अपितु अफ्रीका, स्वटजरलैण्ड, अमेरिका, कनाडा, इंगलैण्ड, अरब, अमीरात आदि देशों में आज भी डाक्टर, इंजीनियर, विधिवेत्ता के रूप में यहां के विद्वान् विराजमान हैं। मिथिलांचल के पूर्व विद्वानों में भारतीय साहित्य का चार मलक्ष्य कूट–कूट कर भरा हुआ था। यहां के विद्वान् उदार कर्मठ निश्छल व्यक्ति हुआ करते थे। अभी भी मिथिलांचल में शिक्षा का विकास कम नहीं है। भारतवर्ष की वाराणसी नगरी को छोड़कर मिथिला की ही दरभंगा नगरी ऐसी है जहां आज भी कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय एवं ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय विराजमान है। यहां का मिथिला संस्कृत शोध संस्थान, यहां का चिकित्सा महाविद्यालय उत्तर भारत में सुप्रसिद्ध है। यहां की चित्रकला, यहां की संगीतकला, यहां की मातृभाषा, यहां की वैश–भूषा सब कुछ अभी भी विलक्षण ही है। यहां वर्णाश्रमधर्मी का पालन उदारतापूर्ण रहा है। यहां सर्वधर्म सहिष्णुता अपूर्व अभी भी दृष्टिगोचर होती है। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार होने पर भी अंग्रेजी मिशनरियों का प्रचार प्रसार होने पर भी मिथिलांचल में इसाईयों की संख्या नगण्य है। यहां अन्तजातीय विवाह आज भी नगण्य है। यहां ब्राह्मणों में, क्षत्रियों में, वैश्यों में, शूद्रों में अनेक अवान्तरजातियां है किंतु अभी भी कहीं संघर्ष नहीं है। यहां की धार्मिक भावना वस्तुतः सराहनीय है। इन्हीं तथ्यों को देखकर वर्तमान संदर्भ में हम मिथिला को लेकर शोधकार्य उपस्थापित करना चाहते हैं जिससे मिथिलांचल का सुहृथकालीन गौरव स्वरूप पूर्णरूप से सुस्पष्ट हो सके। वैसे तो कई विद्वानों ने मिथिला के कई क्षेत्रों में खोज की है लेकिन सभी विद्वानों के विभिन्न दृष्टिकोण रहे है। अतः मैं अपने दृष्टिकोण को लेकर मिथिला का इतिहास प्रस्फुटित करना चाहता हूं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मिथिला की सामाजिक संरचना एवं परंपरा विलक्षण एवं अद्वितीय रही है, इतिहास के आइने में इसकी पृष्ठभूमि सदा से सदाबहार रही है। पूर्व से पाश्चात्य तक सभी इतिहास वेत्ताओं के लिए यहाँ की सामाजिक संरचना एवं सामाजिक सौहार्द की परंपरा अनुकरणीय रहा है। यह भूमि सांस्कृतिक और सामाजिक सामंजस्य के लिए पूजनीय रही है। यहाँ की विविधता में एकता अनुकरणीय है।

संदर्भ श्रोतः–

1. डॉ. उपेन्द्र ठाकुर, हिस्ट्री ऑफ मिथिला– पृ. –190
2. इंडिया हिस्टोरिकल क्वार्डलीं, भाग–7, पृ.– 679
3. मैथिल भूसुर पंजी प्रबंध (मि.त.वि., पृ.–136)।
4. दी वैदिक एज–आर.सी.मजुमदार एण्ड ए.डी.पुसालकर, पृ.–461–62
5. ऐतरेय ब्राह्मण–12, 2
6. शतपथ ब्राह्मण–13, 5–2
7. तैत्तिरीय संहिता–6, 1, 6, 5 : एन्सियन्ट इंडियन एडुकेशन,
8. एस.के.मुखर्जी, 105, वौल्यूम–5, पार्ट–2, पृ.–4
9. हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर–1, 27, 74, जे.के.मिश्र
10. मिथिला दर्पण–आर.एस.दास, पृ.–16
11. लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया – ग्रियर्सन, वोल्यूम–5, पार्ट–2
12. हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर, जे.के.मिश्र
13. वृहदारण्यक उपनिषद्, पृ.–305
14. हिन्ट्री ऑफ दि मिथिला लिटरेचर–जे.के.मिश्र : मिथिला दर्पण–आर.आर.दास